बुनकरों की आर्थिक विपन्नता बयान करता : 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया'

प्रा.डॉ. शेख मुखत्यार शेख वहाब
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
कला महाविद्यालय, बिडकीन,
तह. पैठण, जि. औरंगाबाद

मुस्लिम जन-जीवन में आर्थिक संदर्भ के अंतर्गत 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में बनारस के मुसलमान बुनकरों की आर्थिक स्थिति का सजीव अंकन हुआ है। उपन्यास का नायक मतीन है। अलीमुन उसकी पत्नी है और इकबाल उसका बेटा है। बनारस में बुनकरों की बस्ती में मतीन रहता है। मतीन की पत्नी अलीमुन को टी.बी. है। उसे रह-रहकर खुन की उल्टियाँ होती हैं। कोई दवा असर नहीं कर रही है। ऐसी स्थिति में घर में ठीक तरह से खाने-पीने के लिए नहीं है।

मतीन जिस घर में पैदा हुआ, उसके पिता और अपने दादा सभी को बानी पर बिनते देखा है। उसकी समझ में नहीं आता है कि उस समय घर की हालत और आज में कुछ फ़र्क नहीं है। अपनी आर्थिक दशा पर मतीन सोचने लगता है - "जब से होश संभाला है, मतीन बानी पर ही बानी रहा है। उसके बाप भी बानी पर बिनते थे। इतनी हैसियत कभी नहीं हुई कि अपना क्लान खरीद सके।" (झीनी-झीनी बीनी चदरिया - अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.सं.११)

बुनकरों के ही बस्ती में रहने वाले हाजी अमीरुल्ला ने इसी व्यापार में कई कोठियाँ बनवाली है। बुनकर कितनी ही मेहनत मशक्कत से बीनता है परन्तु हफ्ते भर में सिर्फ़ नब्बे रुपये ही उसे मिलते हैं, जिसमें से पाँच रुपये 'दाग' तीन रुपये 'मत्ती' और 'रफू' और 'तीरी' में कट जाते हैं। बचे रुपयों में से घर गृहस्थी चलाना पड़ता है। आर्थिक तंगी को देखकर मतीन मन ही मन बुदबुदाता है - "महंगाई की हालात यह है कि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। वाह रे, अल्लाह मियाँ वाह, खूब इन्साफ़ है तेरा भी।" (वही, पृ.सं.११)

मतीन घर की आर्थिक स्थिति से परेशान है। उसे मजबुरी में बीन को बीनना पड़ता है, क्योंकि वह पढ़ा लिखा नहीं है और न ही दूसरा कोई काम ही उसे आता है। आर्थिक परिस्थितियों के आगे से घुटने टेक देने पड़ते हैं और जब वह साड़ी तैयार कर बड़े गिरस्त हाजी अमीरूल्ला को बेचने जाता है, तो वह गौर से साड़ी को देखता है और उसमें कई तरह के ऐब निकालकर रूपये में से कटौती कर लेता है। इससे मतीन का मन बुझ जाता है। उसकी समझ में नहीं आता है कि आखिर इस अन्याय को उन्हें और कितने दिन सहना पड़ेगा - "लेकिन इस तरह की कटौती तो हद है, बेइन्साफी की। आखिर कब तक होता रहेगा यह सब?" (वही, पृ.सं.१७)

आर्थिक विपन्नता को झेल रहे निम्न वर्ग के लोगों का त्यौहार का दिन भी बिल्कुल आम दिनों की तरह ही होता है। हर आनेवाले सालों में वे इसी उम्मीद से फ़ीकि त्यौहार मनाते हैं कि अगले साल तक तो शायद घर की स्थिति सुधर जायेगी। मतीन भी ईद के मौके पर अलीमुन के लिए सूती धोती लेता है। अपने लिए एक लुंगी और इक़बाल के लिए पैज़ामा खरीदता है। चप्पले भी प्लास्टिक की ले लेता है, इस उम्मीद के साथ - "इस साल की ईद ऐसी ही सही। अगले साल, अगर जिन्दगी रह गयी तो देखा जायेगा।" (वही, पृ.सं.३५)

कई तरह से सोच-विचार करने पर मतीन बुनकरों को आर्थिक स्थिति से उभारने के लिए एक सोसायटी बनाता है। सोसायटी बनाने का फायदा बुनकरों को सीधा होगा जिससे बैंक द्वारा ऋण मिलने पर स्वयं का करघा खरीद सकेंगे और अपनी साडियों को मार्केट में बेच सकेंगे। तब उन्हें बिचौलियों के पास गिड़गिड़ाना नहीं पड़ेगा और अपनी मेहनत से बनाई गई साड़ी को उचित दामों में बेच सकेगा। यही सोचकर मतीन सोसाइटी के लिए लगभग तीस जनों के तैयार कर लेता है। लेकिन जब वह अपनी दरख्वास्त ले जाकर बैंक मैनेजर को देता है तो बैंक मैनेजर उसे गालियाँ देता है।

क्योंकि उनके अनुसार वह बैंक को धोखा दे रहा है। मतीन को कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन बैंक मैनेजर द्वारा सोसाइटी के पेपर दिखाने पर हाजी अमीरुल्लाह के कारनामों का पता चलता है। हाजी अमीरुल्लाह मतीन को योजना को ही तीस बुनकरों के फर्जी सोसाइटी और फर्जी हस्ताक्षर करवाकर मतीन से पहले ही बैंक ऋण लेने के लिए दरख्वास्त दे देता है। इस धोखे से मतीन को चक्कर आने लगता है। क्योंकि हाजी अमीरुल्लाह जैसे गिरस्तों के शोषण को मतीन अकेला नहीं रोक सकता। वह हार कर घर वापस आ जाता है। अब बैंक से मिलनेवाले पैसों पर सिर्फ हाजी अमीरुल्लाह का ही हक़ होगा,

हाजी अमीरुल्लाह के फर्जी सोसाइटी और फर्जी हस्ताक्षर के खिलाफ गरीब मतीन कुछ नहीं कर पाता है। वह काफी निराश हो जाता है।

मतीन जैसे कमजोर लाचार और आर्थिक बोझ से दबे हुए बुनकर अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं और उनका जीवन फिर उसी आर्थिक शोषण को सहने के ढर्रे पर चलने लगता है। बुनकरों की समस्या यहीं पर खत्म नहीं होती बल्कि जमाने के साथ-साथ बढ़ती ही जाती है। लतीफ़ जब सेठ कामता प्रसाद के पास अपना माल बेचने के लिए जाता है और उनसे यह आशा करता है कि माल लेते ही सेठ उसे नकदी दे देगा। लेकिन उसकी आशाओं पर से भी पानी फिर जाता है क्योंकि सेठ लतीफ़ को एक चेक देता है और कहता है कि इसे वह ले जाकर किसी भी बैंक में दस-पाँच रूपये देकर खाता खोल लें। उस खाते में यह चेक जमा करने पर उसे पैसे मिल जायेंगे। लेकिन उसके खाते में पैसे एक महीने बाद मिलेंगे। चेक, बैंक खाता और महीने भर बाद पैसे मिलने की बात सुनकर लतीफ़ का शरीर जड़ हो गया, उसे समझ नहीं आया कि वह अब आखिर क्या करें। उसकी परेशानी का वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है - ''लतीफ़ का शरीर जैसे सुन्न हो पाया। थोड़ी देर के लिए उसने चाहा कि अपनी साड़ी मांग लें, लेकिन अब तो चेक कट चुका था। अब तो वह एक महीने की कैद में फँस चुका था। अब कोई रास्ता नहीं था।'' (वही, पृ.सं.११९)

मतीन, बशीर, हनीफ, लतीफ जैसे बुनकर शोषण का शिकार होकर आर्थिक तंगी में ही अपना जीवन गुजार देते हैं। उन्हें कहीं से भी कोई उपाय नज़र नहीं आने पर वे चुपचाप बिचौलियों का शोषण सहते हैं। जीवनपर्यंत कर्ज़ से डुबे रहनेवाले बुनकरों की दुर्दशा का वर्णन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है - ''करघे का कर्ज़ अलग, बनिये का कर्ज़ अलग, कपड़े लत्ते का कर्ज़ अलग, बीमारी-ईमारी का कर्ज़ अलग... भला यह भी कोई ज़िन्दगी है। कितनी-कितनी मेहनत से साडी बिनो, फिर उसे बाज़ार में ले आओ और वहाँ क्या मिलता है? चेक! जो महीने भर बाद भुनता है। सोसायटी के जरिये बड़ों-बड़ों की साडियाँ ही बिकती हैं। गरीबों को भला कौन पूछता है?'' (वही, पृ.सं.२०१)

मतीन का बेटा इकबाल दूसरी पीढ़ी का युवक है। शोषित बुनकरों की स्थिति देखकर उसे काफी आक्रोश आता है। उसे याद है कि उसकी माँ टी.बी. से ग्रस्त थी लेकिन सही इलाज नहीं हो पाने पर उसने अपनी माँ को खोया। उसे यह भी याद है कि उसकी माँ को एक बार बनारसी साड़ी पहनने का शौक था लेकिन जीते जी उसकी यह ख्वाहिश पूरी नहीं हुई। इकबाल फिर से सोसायइटी बनाता है। सभी लोगों को एकमत करने में वह अपने साथियों के साथ मिलकर कड़ी मेहनत करता है। मतीन अपने साथियों के साथ हड़ताल शुरू कर देता है। विरोध का कार्यक्रम लगभग अठराह दिन चलता है। रोज कोई-न-कोई आता है समझौता कराने के लिए लेकिन इकबाल, मतीन, हनीफवा आदि सभी एक जुट होकर दृढ निश्चिय से कह देते हैं कि जब तक कटौती का सिलसिला खत्म नहीं होगा और को-ऑपरेटिव सोसाइटियों में आम बुनकरों की भागीदारी शामिल नहीं होगी, तब तक वह हड़ताल जारी रखेंगे। हड़ताल लम्बी खिंचने तथा 'सफर' पर्व के आ जाने के कारण लोग बेचैन होने लगे। मतीन ने तब उपाय सोचा कि हड़ताल लम्बी खींचने से घरों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने लगती है। इसीलिए मतीन ने अनशन शुरु कर दिया। मतीन का यह अनशन वह आन्दोलन था जो बुनकर लोगों के अन्याय के प्रति विद्रोह था। यही नहीं बुनकरों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए मतीन के द्वारा प्रथम पहल थी - ''अनशन पर चाहे कोई भी बैठा हो, पर मतीन बराबर स्टेज पर बैठा रहता था - गुमसुम और एक अजीब से तनाव में डुबा हुआ।'' (वही, पृ.सं.२०६)

इकबाल जैसे युवा पीढ़ी बुनकरों को आर्थिक अवस्था से उभरने के लिए प्रयत्नशील हैं। आंदोलन, अनशन द्वारा वे अपनी बात समाज के सभी वर्गों को बताना चाहते हैं। संघर्ष चल रहा है लेकिन बुनकरों की आर्थिक अवस्था में कोई सुधार होगा या नहीं, यह सवाल अभी भी शेष है।

निष्कर्षतः आलोच्य उपन्यास से हमें ज्ञात होता है कि मुस्लिम समाज में दरिद्रता भयावह रूप में विद्यमान है। निम्न एवं मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारों में गरीबी का सर्वव्यापी रोग व्याप्त है। दैनिक रोजगार, मौसमी रोजगार में कुछ मुसलमान लगे हैं तो अन्य बीड़ी बनाने तथा कपड़ा बुनने के काम में लगे हैं - चोरी करना, टाँगा चलाना, रिक्शा चलाना, जुआ खेलना आदि मुस्लिम परिवारों की आर्थिक तंगी को दर्शाता है। ऋण के रोग से मुस्लिम किसान छूट नहीं पाते। ऋण ग्रस्तता के कारण गरीब, मज़बूर किसान महाजनों के चंगुल से जीवन भर निकल नहीं पाते। धन की लोलुपता के कारण कई प्रकार के गलत कामों में वे लिप्त दिखाई देते हैं। अधिकांश युवकों का भविष्य अन्धकारमय दिखाई देता है, क्योंकि आज भी निम्न वर्गीय मुस्लिम समुदाय में शिक्षा को कम महत्त्व दिया जाता है और धार्मिक शिक्षा पर अधिक जोर देते हैं। स्त्रियों की दशा शोचनीय है। सामाजिक बंधन और आर्थिक विषमता स्त्री के प्रगती में रोड़ा है।